द्वारा

डॉ आशीष सिसोदिया

भाषा की प्रकृतिगत विशेषताएँ -

यों तो हर भाषा की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं, किन्तु सामान्य रूप से कुछ ऐसी भी विशेषताएँ हैं जो सभी भाषाओं पर लागू होती हैं। यहाँ केवल सभी भाषाओं की सामान्य विशेषताओं पर विचार किया जा रहा है -

(1) भाषा सामाजिक वस्तु है - भाषा समाज में ही आपसी सम्पर्क से उत्पन्न हुई है, समाज ही उसका प्रयोग करता है और उस समाजिक प्रयोग के कारण ही वह विकसित होती है, जीवित रहती है और अन्त में भाषा जब मरती है तो समाज में ही उसकी मृत्यु भी होती है। इस प्रकार भाषा का पूरा जीवन (उत्पत्ति, विकास, मृत्यु) समाज से संबंधित है, इसलिए भाषा पूर्ण रूप से सामाजिक वस्तु है।

(2) भाषा पैत्रिक सम्पत्ति है - पैत्रिक सम्पत्ति उसे कहेंगे जो अनायास पुत्र को माता-पिता से मिल जाए। भाषा में बारे में ऐसा नहीं है। हिन्दी बोलने वाले माता-पिता का बेटा यह आवश्यक नहीं है कि हिन्दी ही बोले। यदि शिशु अवस्था में ही वह जापन चला गया और वहीं के समाज में वह बड़ा होता है तो वह स्वभावतः जापानी ही बोलेगा और यदि उसका हिन्दी कोई भी संबंध न रहा हो तो हिन्दी उसे बिल्कुल नहीं आएगी। इस तरह कोई भी भाषा हम केवल अनायास सहज रूप से इसलिए नहीं सीख सकते कि वह हमारे माता-पिता की भाषा है।

(3) भाषा अर्जित सम्पत्ति है - जो पैत्रिक सम्पत्ति नहीं होती है वह अर्जित होगी। भाषा भी अर्जित है। व्यक्ति उसका अर्जन परिवार से या समाज से करता है। इसी कारण हम जिस भी समाज में रहते हैं उसी की भाषा अर्जित कर सकते हैं और कर लेते हैं। बिन्दु संख्या दो में हमने देखा कि जापानी समाज से अर्जन करने के कारण हिन्दी भाषी माता-पिता का पुत्र जापानी भाषी हो गया इसी प्रकार यदि कोई जापान से कोई शिशु यहाँ आकर बस जाए तो वह हिन्दी भाषी समाज में रहकर हिन्दी भाषा का ही अर्जन करेगा।

(4) भाषा का अर्जन अनुकरण से होता है - अनुकरण मनुष्य का बहुत बड़ा गुण है। सामाजिक व्यवहार की सारी बातें हम अनुकरण द्वारा ही सीखते हैं। भाषा के संबंध में भी यही सत्य है। हम समाज में रहकर दूसरों के अनुकरण से भाषा (किस वस्तु या क्रिया का नाम है या किस बात को कैसे कहें ) सीखते हैं। बच्चे इसके अनुकरण में कभी-कभी गलती कर जाते हैं, किन्तु शीघ्र ही फिर अनुकरण करके अपनी गलती ठीक कर लेते हैं।

(5) भाषा परिवर्तनशील है - भाषा में हमेशा ही थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के कारण ही संस्कृत का ’घृत‘ शब्द हिन्दी में ’घी‘ बन गया तथा ’कृष्ण‘ ’कान्ह‘ हो गए। वस्तुतः परिवर्तन इस विश्व का शाश्वत नियम है। हमारा विश्व, हमारा समाज, हमारा ज्ञान सभी कुछ परिवर्तित होता रहता है, उसी प्रवाह में भाषा भी परिवर्तित होती रहती है। भाषा का यह परिवर्तन कई रूपों में तो समाज के परिवर्तन के साथ भी चलता है।

(6) भाषा का कोई अंतिम रूप नहीं होता - इस चिर परिवर्तनशीलता के कारण ही जीवित भाषा का कोई अंतिम रूप नहीं होता। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अमुक भाषा का यह रूप अन्तिम है और इसमें आगे और परिवर्तन या विकास नहीं होगा। भाषा यदि जीवित रहेगी तो उसमें परिवर्तन अवश्य होगा। परिवर्तन ही जीवन है - चाहे वह जीवित भाषा का हो, या समाज का, या मनुष्य का, यह बात जीवित भाषा के बारे में कही जा रही है। मृत भाषा का अन्तिम रूप तो स्वभावतः उसका अन्तिम रूप होता ही है।

(7) भाषा के परिवर्तन या विकास की धारा कठिनता से सरलता की ओर जाती है - मनुष्य में यह प्रवृत्ति जन्म से ही होती है कि कम-से-कम प्रयत्न से वह अधिक-से-अधिक काम कर ले। इस कम-से-कम प्रयत्न करने की प्रवृत्ति के कारण ही भाषा में प्रायः वे ही परिवर्तन आ पाते हैं, जिनके आने से, कम-से-कम प्रयास में अधिक-से-अधिक अभिव्यक्ति संभव हो। सरल बनाने की इसी प्रवृत्ति ने ब्राह्मण को ’बाम्हन‘, चिह्न को ’चिन्ह‘, प्साइकाॅलजी (च्ेलबीवसवहल) को उच्चारण में ’साइकाॅलजी‘ तथा क्नो (ज्ञदवू) को ’नो‘ कर दिया है।

(8) हर भाषा का अपना एक स्पष्ट या अस्पष्ट मानक या आदर्श रूप होता है- भाषा का प्रयोग करने वाला जाने-अनजाने उस भाषा के आदर्श या उसके यथासाध्य निकटतम रूप का प्रयोग करता है। उसी आदर्श के कारण वक्ता जो कुछ कहता है, श्रोता उसका प्रायः वही अर्थ ग्रहण करता है। इस एक रूप के कारण ही एक भाषा-भाषी हजारों, लाखों या करोड़ों लोगों में आपस में विचार-विनिमय होता है। हर समाज में भाषा की बोधगम्यता का मूल आधार उसमें प्रयुक्त भाषा का वह आदर्श रूप ही होता है चाहे वह कितना भी अस्पष्ट क्यों न हो।

(9) हर भाषा के प्रायः कर व्यक्ति की अपनी भाषिक विशेषता होती है - हर भाषा के प्रायः हर व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत भाषा उसी भाषा के अन्य लोगों की तुलना में किसी-न-किसी रूप में थोड़ी बहुत भिन्न होती है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो हर भाषा के किसी-न-किसी रूप में उतने ही भेद होते हैं जितने उसके बालने वाले होते हैं, किन्तु यह भेद बहुत सूक्ष्म होता है कि सामान्यतया यह ज्ञात नहीं होता।

(10) हर भाषा की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं - ऊपर की सभी विशेषताएँ या बातें यों तो सभी भाषाओं में पाई जाती हैं किन्तु इस समानता के बावजूद विश्व की सभी भाषाओं की अपनी अलग-अलग विशेषताएँ भी होती हैं। यदि सभी की अपनी-अपनी अलग-अलग विशेषताएँ न हों तो फिर सभी अलग-अलग भाषाएँ ही न हों। ये अलग-अलग विशेषताएँ ध्वनि, शब्द-समूह, रूपरचना, वाक्यरचना या अर्थ आदि कई स्तरों पर हो सकती हैं।

(11) भौगोलिक विशेषता - प्रत्येक भाषा की निश्चित भौगोलिक सीमा होती है। सीमा के भीतर ही उस भाषा का अपना वास्तविक क्षेत्र होता है। उस सीमा से बाहर उसका स्वरूप थोड़ा सा अधिक परिवर्तित हो जाता है या उस सीमा के बाहर पूर्णतः किसी दूसरी भाषा की सीमा प्रारंभ हो जाती है।

(12) भाषा विकसनशील है - भाषा निरन्तर विकास करती है। किसी भी भाषा का विकास उसके प्रयोग करने वाले मनुष्यों पर निर्भर करता है। संस्कृत का अनेक क्षेत्रों में प्रयोग होने से वह हजारों वर्ष पूर्व ही प्रौढ़ हो चुकी थी। इसी प्रकार अंग्रजी के निरन्तर विकास का भी यही कारण है।

(13) भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है - संयोग का अर्थ है मिली हुई स्थिति। जैसे - ’रामः गच्छति‘ से वियोगावस्था है - राम जाता है। संस्कृत में लम्बे-लम्बे सामाजिक पद पाए जाते हैं जबकि संस्कृत से विकसित हिन्दी में छोटे-छोटे पद पाए जाते हैं।

उपर्युक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त उच्चारण-अवयवों से उच्चरित, यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीक युक्त, सार्थक, व्यवस्थित तथा समाज-विशेष में विचार-विनिमय का साधन आदि भाषा की कुछ और भी ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनकी ओर भाषा की परिभाषा में संकेत किया जा चुका है।